पश्चिम की शोषणात्मक अर्थव्यवस्था और स्वदेशी

दत्तोपंत ठेंगड़ी

आकाशवाणी प्रकाशन

नई रेल्वे रोड, जालन्धर-१४४००१

मूल्य

ॐ

मा० दत्तोपंत जी ठेंगड़ी

द्वारा

"स्वदेशी"

विषय पर पठानकोट के

स्वयंसेवकों के सामने

20 मार्च 1992 को दिया गया

बौद्धिक

●

दो शब्द

आज भारत की आर्थिक स्थिति डगमगा रही है। उसका कारण है बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा हिन्दुस्तान के आर्थिक क्षेत्र में घुस पैठ। इसी कारण आर्थिक गुलामी का संकट हमारे सामने है। इस संकट से उभरने का मार्ग है स्वदेशी अर्थ व्यवस्था। स्वदेशी अर्थ नीति के विषय में विचार मंथन चल पड़ा है। इसी सम्बन्ध में देश के महान विचारक माननीय दत्तोपन्त जी ठेंगड़ी ने पठानकोट (पंजाब) के स्वयंसेवकों के सामने अपने विचार रखे। पश्चिम की शोषणात्मक अर्थ व्यवस्था एवं पूर्व तथा पश्चिम की जीवन दृष्टि में अन्तर बताते हुए उन्होंने भारतीय आर्थिक व्यवस्था एवं देश भक्ति की भावना का स्वदेशी मानसिकता जगाने में महत्त्व स्पष्ट किया।

स्वदेशी का आन्दोलन केवल आर्थिक आन्दोलन नहीं यह भारतीय अस्मिता को जागृत करने का आन्दोलन है। इसी से देश की राजनैतिक स्वाधीनता भी स्थिर रहेगी। आत्म सम्मान जगेगा। आत्मनिर्भरता बढ़ेगी।

आशा है माननीय ठेंगड़ी जी के विचारों से पाठक प्रेरणा लेंगे और मन तथा जीवन से स्वदेशी को अपनायेंगे।

—प्रकाशक

समाचार पत्र आंशिक सत्य बताते हैं

स्वतन्त्रता के 45 साल के काल में भारत के मानस पर गलत प्रचार के कारण एक गलत चित्र अंकित किया गया है। आर्थिक क्षेत्र के सम्बन्ध में तथा अन्य भी कई विषयों पर जनमानस में बहुत भ्रांतियां हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि सर्व साधारण आदमी को इसकी पूरी जानकारी समाचार पत्रों से मिलती है, यह गलत ख्याल है। वास्तव में समाचार पत्रों के माध्यम से पूरी जानकारी होना असम्भव है। आईस बर्ग का नाम सुना होगा। दक्षिण समुद्र में बर्फ के पहाड़ तैरते हैं। उनके विषय में कहा गया है कि उनका आठवां भाग समुद्र के पानी के ऊपर रहता है तथा 7/8 भाग पानी के अन्दर रहता है और वह बहुत विस्तृत रहता है। जो पानी के नीचे है वह एकदम दिखता नहीं। उधर से जाने वाले कई जहाज उस पहाड़ से टकराते हैं, फूट जाते हैं, टूट जाते हैं। एक बड़ा जहाज टिटैनिक नामक 1914 को टूटा था। और एक रशियन जहाज नौ मास पहले टूट गया था। इसी प्रकार हमारा सामान्यजन आईस बर्ग के ऊपर के 1/8 भाग का ही अंदाजा लगाता है तथा 7/8 भाग जो पानी के अन्दर है और जो विस्तृत है उसके बारे में उसे जानकारी नहीं। इस कारण हम जो अन्दाजा लगाते हैं वह गलत निकलता है। तो आधारभूत सूचना जब तक हमारे पास नहीं तब तक यह समझना चाहिए कि जो हम समाचार पत्रों में पढ़ते हैं वह आंशिक सत्य है। पूरा सत्य हमारे पास नहीं है। इसमें कोई आपत्ति नहीं कि आंशिक सत्य को ही पूरा सत्य समझते हैं। और उसी से ही हम परिणाम

निकालते जाते हैं यह गलत है। इस गलती के कारण हमें अलग-अलग विषयों में गलतफहमी पैदा होती है।

विचारधारा के दो आयाम

उदाहरण के लिए साम्यवाद का नष्ट होना एक बड़ी घटना है। लोग कहते हैं कि कम्यूनिज्म तो खतम हो गया। यह सही है। गलत भी है। और फिर कहते हैं कि सारे कम्यूनिस्ट देश कैपिटिलिस्ट बनने जा रहे हैं। ऐसा है क्या? एकदम कम्यूनिज्म का पतन हुआ यह बात सत्य है लेकिन किसी भी विचारधारा का पूरी तरह से विनाश होता है क्या? जो मकान 100-150 साल में खड़ा हुआ उसे गिरने में भी कुछ समय लगता है। हमने अखबार पढ़ लिया। जगह जगह कम्यूनिस्टों के रिव्यू सुन लिये। कहा कि विचारधारा खतम हो गई। विचारधारा को दो ढंग से देखना चाहिए। एक विचारधारा और दूसरी संस्था के नाते। विचारधारा तो पहले ही खतम हो चुकी थी। आज भी चीन में विचारधारा खतम है कम्यूनिस्ट पार्टी का बोर्ड है जैसे पश्चिम बंगाल में कम्यूनिज्म समाप्त हुआ है। कम्यूनिस्ट पार्टी का बोर्ड है। उनकी पार्टी वाले ज्योतिबसु को बुर्जुआ कहते हैं। दिल्ली के समान ही दिल्ली की कैपिलिस्ट नीतियों को लेकर चल रही। मानो कलकत्ता में कम्यूनिज्म इतना ही है जितना दिल्ली में गांधीवाद है। दिल्ली में शुरू से लेकर जितने भी प्रधानमन्त्री बने सब गांधीवादी थे पर क्या गांधीवाद कहीं है? कोई भी विचारधारा तब तक पूरी तरह नष्ट नहीं होती जब तक उसका संस्थापन नष्ट नहीं होता। संस्थापन में जिसका निहित स्वार्थ है ऐसा आखिरी आदमी जब तक जीवित है तब तक पूरी नष्ट नहीं होती।

उदाहरण के लिए हिन्दू महासभा की बात है। उसके बारे में हमारे मन में बड़ी श्रद्धा है। आज हिन्दू महासभा है कि नहीं है कोई बता सकता है क्या? प्रभाव की दृष्टि से देखा जाये तो नहीं है। परन्तु जब तक सम्पत्ति है, भवन है, बैंक बैलेंस है और उसमें स्वार्थ रखने वाला आखिरी आदमी समाप्त नहीं होता तब तक हिन्दू महासभा है। संस्थापन जब तक पूरी तरह से खतम नहीं होता तब तक है। जब तक विचारधारा में स्वार्थ रखने वाला आखिरी आदमी है तब तक उसका झण्डा लहराने वाला कोई न कोई रहेगा। इसी प्रकार कम्यूनिस्टों की बात है। वे भटक रहे हैं। यह ठीक है कि वे फ्री मार्कीट की ओर जा रहे हैं, कैपीटलिज्म की ओर जा रहे हैं, वह विकल्प खोज रहे हैं। वह पूंजीवाद की ओर जा रहे हैं यह भी गलत है। मीर्कीट इकोनोमी की ओर जा रहे हैं यह भी ठीक है। इसका कारण है कि वे संत्रस्त हैं इसलिए और किसी विकल्प की ओर जा रहे हैं। इसका मतलब यह नहीं कि सारे पूंजी-वाद के समर्थक हो गये। ऐसा नहीं है। वे अभी खोज रहे हैं मार्कीट इकोनोमी के दुष्परिणाम वे जानते हैं। इन दुष्परिणामों से बचा जा सकता है क्या? कोई तीसरा विकल्प है क्या? वे खोज रहे हैं। लेकिन जहां जहां वे जाते हैं ये दोनों भ्रांतियां समाचार पत्रों में होती हैं।

पश्चिम से उधार लेने की वृत्ति

पिछले 40-45 साल में कुछ गलत धारणाएं इस देश में प्रचलित करने का काम किया गया। उसमें से एक धारणा है कि अर्थ व्यवस्था का यदि निर्माण करना हो या संविधान यदि बनाना हो तो वह पश्चिम से लेना पड़ेगा। हमारे देश में तो उसके विषय में कुछ भी नहीं है। अब अर्थ व्यवस्था की ही बात है। अलग-अलग

समस्याएं हैं या तो उसके लिए नियन्त्रित अर्थव्यवस्था कम्यूनिस्टों से लीजिए या फिर कैपीटलिस्टों से स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था लीजिए और क्या रास्ता इसमें से हो सकता है। विषय लम्बा है। उदाहरण के लिए प्राईस पालिसी है। मांग और पूर्ति कन्ट्रोल करेगा या इधर सरकार कन्ट्रोल करे तब चलेगा। अपने देश में तो इस विषय में कुछ बताया नहीं गया ऐसा नहीं है। हम बाहर के बारे में ज्यादा जानते हैं अपने बारे में नहीं जानते। पिछले हजारों सालों से हमारा राष्ट्र है। क्या हमारा राष्ट्र बिना कीमत नीति के चला होगा ? पश्चिम देश के लोग जब नग्नावस्था में थे उस समय हमारा देश वैभवशाली था। क्या किसी पालिसी के बगैर होगा ? वास्तव में हमारी पालिसियां अलग हैं। पश्चिम की पालिसियां अलग हैं। पश्चिम में प्राइसिस के बारे में एक विद्वान ने ग्रन्थ लिखा है जिसमें उन्होंने लिखा कि यह जो अर्थ व्यवस्था है यह कीमते बढ़ने की समस्या है। एक और विद्वान है डैनमार्क के मिस्टर पैन, उसने अपने ग्रंथ में दिखाया है कि पांच सौ साल तक कीमते बढ़ती ही गईं। यह सूत्र कहां से निकाला ? पता नहीं। पिछले चार हजार साल तक दुनिया में कीमते कैसे बढ़ती ही गई यह दिखाया। दोनों ने सिद्धांत निकाला कि स्वस्थ प्रणाली याने कीमतों में वृद्धि और इसलिए जब कीमतें गिरना शुरु होती है तो यह विकृति है, मंदी आ गयी। यह पश्चिमी विचार हैं कीमतों का अखण्ड बढ़ते जाना ही स्वस्थ प्रणाली है।

भारतीय दृष्टिकोण

हमारे शास्त्र में कहा है कि बढ़ी हुई कीमतों के लिए यह राजा का पाप है ऐसा मानना चाहिए। यह हमारे शास्त्रों में कहा

हैं। यह हमारी अपनी धार्मिक परिभाषा है। फिर कीमतों के बारे में हमारे यहां समय-समय पर फारमूले भी दिए गए हैं। ऐसा कहा गया है कि कीमत निर्धारण किसी सिद्धान्त पर आधारित होना चाहिए। शुक्र ने ऐसा कहा है :—

येनं व्ययेन संसिद्धः तद व्ययः सत्य मूल्यकं

जितने व्यय से वह बात सिद्ध होती है याने उत्पादन लागत जो है वह उसकी वास्तविक कीमत है। आधार है। लेकिन इसी पर सारी कीमतें चलेंगी ऐसी बात नहीं। कीमतों में परिवर्तन हो सकता है ऐसा बताया। लेकिन यह परिवर्तन किसी कारण को लेकर होना चाहिए ऐसा बताया। परिवर्तन किस आधार पर होगा यह बताया।

सुलभासुलभः वाच्य अगुणत्व गुणसंश्रयी
यथा कामन् पदार्थानाम् अर्घ हीनाधिकं भवेत्

अर्घ याने कीमतें कम ज्यादा होना किस आधार पर। सुलभा-सुलभ वाच्य वह कमोडिटी कितनी सुलभ है कितनी असुलभ है। डिगरी आप यूटिलिटी। उसका जनता के लिए कितना उपयोग है? कम है या ज्यादा है। जिसे मांग और पूर्ति का नियम कहते हैं उसी का यह पुराना वर्णन है। यानी अबण्डैंस एण्ड सिक्येरसिटी एक तरफ और डिगरी आप यूटिलिटी एक तरफ। इसके आधार पर सम अधिक मूल्य होता है। लेकिन संतुलन से बहुत दूर नहीं जाना चाहिए। वह है उत्पादन लागत ऐसी कुछ नीतियां रही हैं।

नेहरुवादी अर्थनीति

एक शब्द आजकल बहुत चला है। क्यों चला है हमें पता

नहीं। वह एक आर्थिक माडल तो है ही। नेहरु विजन क्यों कहते हैं हमारे ख्याल में नहीं आया। माडल देने वाले में पहले बौद्धिक शक्ति चाहिए कि वह माडल दे सके। जवाहर लाल जी बहुत श्रेष्ठ पुरुष होंगे लेकिन माडल देने के लिए जो मौलिक विचार चाहिए वह उनका नहीं था। उनके प्रति पूरे सम्मान के साथ। महात्मा जी में था। मौलिक विचारकों में जैसे मार्श आते हैं महात्मा जी आते हैं नेहरु जी ने अपना कोई माडल नहीं दिया। पश्चिम का अनुकरण किया। वह नकलची था। और महालनो बीस जब प्लानिंग कमीशन में आया उन्हें कहा गया कि तुम रचना करो। पश्चिम का अनुकरण करते हुए। यह Nehru vision माडल हो तो वह महालनोबीस का माडल है जो वास्तव में पश्चिम का माडल है। जो जो जवाहर लाल जी को कोसना चाहते हैं वे कहते हैं कि नेहरु माडल फेल हो गया। माडल फेल हो गया लेकिन उसे नेहरु का नाम देना मानो अकारण उसे अधिक श्रेष्ठ बताना है। अब यह जो माडल है वह किस परिस्थिति में निर्माण हुआ यह थोड़ा हम देखें। और हमारे यहां जो संकट आ रहा है वह इस माडल के चलते हुए कैसे आया ? इसका थोड़ा सा इतिहास संक्षेप में देना मैं आवश्यक समझता हूं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात्

15 अगस्त 1947 को हिन्दुस्तान को स्वातन्त्र्य मिला। हमने तो कहा कि हमारी बहादुरी के कारण मिला। सिंगापुर ने कौन सी बहादुरी दिखाई। श्रीलंका आदि छोटे-छोटे देशों ने कौन सी बहादुरी दिखाई सब को स्वातन्त्र्य मिला। इसका कारण ऐसा है कि दूसरे महायुद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का ऐसा दबाव निर्माण हुआ कि श्वेत साम्राज्यवादी देशों को अपने ही देशों

पर साम्राज्य चलाना असम्भव हो गया इस दबाब में हमें स्वराज्य मिला। स्वराज्य तो दे दिया लेकिन स्वराज्य देने के पश्चात् उनके सामने महा संकट खड़ा हुआ। जो पूर्ण साम्राज्यवादी देश थे उनके सामने महा संकट खड़ा हुआ। जब तक साम्राज्य था तब तक सब लोगों को ऐसा लगता था कि ये बहुत समृद्ध देश हैं। वास्तव में वे देश समृद्ध नहीं थे। जैसे जापान और इण्डिया की बात है। जापान स्वयं एक समृद्ध देश नहीं है। जापान के पास कोई साधन नहीं है। लोहा भी चाहिए तो बाहर से लाना पड़ता है। तांबा भी चाहिए तो बाहर से लाना पड़ता है। इसलिए कहा जाता है कि जापान गरीब देश है परन्तु जापानी अमीर हैं।

हमारे पास साधन बहुत हैं। हमारे पास मनुष्य बल बहुत है। हमारे पास प्राकृतिक साधन बहुत हैं और आज जो साइंस और टैकनालोजी की बात करते हैं तो आज भी संसार की नम्बर तीन की साईंटिफिक कम्यूनिटी हम हैं। जब यहां से विदेशों में बौद्धिक पलायन हो रहा है तो भी हम दुनिया की नम्बर तीन की साईंटिफिक कम्यूनिटी है।

साम्राज्यों द्वारा शोषण

जिन लोगों ने साम्राज्य किया उन लोगों ने अपने उपनिवेशों का शो ण किया। उपनिवेशों के शोषण के आधार पर उनकी समृद्धि दिखाई देती थी, उदाहरण के रूप में कपड़े की बात लीजिए। यहां से कपड़ा सस्ते दाम पर खरीदना, इंग्लैंड ले जाना। वहां लंकाशायर, मानचेस्टर में पक्का कपड़ा बनाना और यहां फिर ज्यादा कीमत पर बेचना। कच्चा माल सस्ते में ले जा सकते थे। उनका राज्य था। और उनके कपड़े के लिए मार्कीट भी

हिन्दुस्तान था। यहां अपनी कीमत पर वे कपड़ा बेच सकते थे। याने कच्चे माल का स्रोत और मार्कीट दोनों तरफ से हिन्दुस्तान का उपयोग होता था। यह शोषण चलता था। इसके कारण वे समृद्ध थे।

साम्राज्यों का संकट

तृतीय विश्व के सभी देशों को स्वराज्य दे दिया फिर शोषण किसका करें ? यह सवाल था और शोषण करने की इजाजत तब स्वतन्त्र देश कैसे देंगे ? कौन देश अपना शोषण होने दगा ? यदि शोषण नहीं होगा तो उनका आर्थिक ढांचा चरमरा जायेगा। ऐसी उनको हालत थी। आज तो हम उनके नये साम्राज्य की बात कर रहे हैं। परन्तु 1947 में ऐसी हालत थी। यदि अन्य देशों का उन्होंने आर्थिक शोषण नहीं किया तो उनका आर्थिक ढांचा टूट जाएगा। क्या करना चाहिए ? उन्होंने उसमें से रास्ता निकाला।

संकट से उभरने का रास्ता

उन्होंने सोचा कि कोई भी स्वतन्त्र देश खुद अपना शोषण तो होने नहीं देगा। तो पहले उन्होंने डिक्टेटरशिप वाले देशों को लिया। दूसरे महायुद्ध के पश्चात् जितने देशों को स्वतन्त्रता मिली उनमें से ज्यादातर देश डिक्टेटरशिप के थे। डिक्टेटरशिप में इनके लिए सहूलियत क्या थी ? देश में लोकतन्त्र नहीं जनजागरण नहीं, लोकशक्ति नहीं। डिक्टेटर है उसके कोई पांच, पान्च सौ, पांच हजार ऐसे कोई समर्थक हैं। इतने लोगों को एक बार यदि हमने खरीद लिया तो इन लोगों को वाध्य किया जा सकता है कि तुम सुरक्षित हो। तुमको जितनी चाहिए हम आर्थिक सहायता देते हैं।

अपनी जनता का आर्थिक शोषण करने की हमें इजाजत दे दो। ऐसा इनके साथ समझौता करना सम्भव है। ऐसे समझौते हुए। इसी में से मार्कोस आदि निकले। थोड़े लोगों को खरीद लेना। उन्हें कहना हमारी नीतियां चलाओ जिससे हमारा मुनाफा बढ़ सके हम तुम्हारे देश का शोषण कर सकें। बहुत से डिक्टेटर खरीदे जाने वाले थे। ऐसे स्थानों पर उन का आर्थिक शोषण का काम शुरु हुआ।

भारतीय और पश्चिमी प्रजातन्त्र

लेकिन जहां प्रजातन्त्र था वहां क्या करोड़ों लोगों को थोड़े ही खरीद सकते हैं ? वहां क्या करना यह एक प्रश्न था। हिन्दुस्तान जिसे दुनिया का सबसे बड़ा प्रजातन्त्र कहा गया है। बहुत लोग इस शब्द से खुश हो जाते हैं। वे भूल जाते हैं कि सबसे बड़ा प्रजातन्त्र कहा गया देश प्रजातान्त्रिक नहीं कहा गया। दोनों में अन्तर है सबसे बड़ा प्रजातन्त्र एक बात है देश प्रजातन्त्र दूसरी बात है। यहां फिर से शोषण की प्रक्रिया कैसे शुरु हो ? यह उनके सामने समस्या थी। हमारे देश के राज नेताओं के सामने दूसरी समस्या थी। हमने देश में विदेशी माडल लाया। संविधान जो बना है वह अपनी भूमि की उपज नहीं है। हिन्दुस्तान में कोई प्रजातन्त्र नहीं क्या। पहले हजारों साल तक डैमाक्रेसी रही है। भारतीय प्रजातन्त्र अलग रूप का था इंग्लैंड और पश्चिम का प्रजातन्त्र अलग अलग रूप का है। हमारे देश में जो प्रजातन्त्र रहा है उसके लिए भारतीय मानस पहले से ही तैयार है। परन्तु वहां के प्रजातन्त्र के लिए भारतीय मानस तैयार नहीं है। लेकिन पश्चिम से जो प्रजातन्त्र आया है उसके लिए वहां के लोगों का मानस तैयार था।

उनकी संस्था के लिए। इंग्लैंड का ही उदाहरण लें। हमने इंग्लैंड का ही अधिक अनुकरण किया दूसरे देशों का थोड़ा ही किया। हमने प्रजातन्त्र की धारणा इंग्लैंड से ली। इंग्लैंड में लिखित संविधान नहीं है। हमारे यहां जैसे कागज पर लिखा है चुनाव हो गया पार्लिमैंट बन गई। विधानसभाएं बन गईं। याने प्रजातन्त्र हमारे ऊपर थोपा गया है। वहां ऐसा नहीं हुआ। 1215 में मैंगनाचार्टा हुआ। उसके पहले से वहां लोकतन्त्र के लिए संघर्ष चल रहा था। होते-होते आज इंग्लैंड की डैमोक्रेसी हम देखते हैं। 1832 में सर्वप्रथम कुछ महिलाओं को मताधिकार मिला। याने वहां भी धीरे-धीरे ही हुआ है विकास। इस संघर्ष के दौरान वहां एक विचार तैयार हुआ जो उनके प्रजातन्त्र के अनुकूल है। हमारे यहां उस तरह का संघर्ष हुआ ही नहीं। इस कारण वैसा मानस तैयार होने की यहां सम्भावना नहीं थी। हमने एकदम उधार का संविधान लिखकर थोप डाला। धारणा वहां की, उसको स्वीकार करने के लिए आज भी भारतीय जनमानस तैयार नहीं। उस प्रकार के प्रजातन्त्र के लिए जो स्वभाव चाहिए वह देश में नहीं। स्वभाव हमारा नहीं, इस भूमि की उपज नहीं। हमारे देश के ढांचे और इंग्लैंड के ढांचे दोनों में अन्तर है।

विदेशी संविधान भारत के अनुकूल नहीं

कारण यह था कि हिन्दुस्तान का संविधान हिन्दुस्तान के लिए उपयुक्त नहीं था। बड़े-बड़े श्रेष्ठ विचारकों ने यह चेतावनी बहुत पहले से दी थी। 1908 में गांधी जी ने हिन्द स्वराज्य नाम की पुस्तिका लिखी। स्पष्ट रूप से लिखा कि इंग्लैंड का संविधान हमारे देश के लिए ठीक नहीं रहेगा। 1915 में योगी अरविन्द ने

कहा ब्रिटिश का बहुमत वाला प्रजातन्त्र हिन्दुस्तान में चलेगा नहीं। 1926 में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने जेल में रहते हुए एक किताब लिखी उसमें उन्होंने कहा कि यदि इंग्लैंड के टाइप का इलैक्शन यहां आता है तो यहां महान भ्रष्टाचार होगा, लोग खरीदे जायेंगे, देश में अशान्ति होगी। स्वराज्य प्राप्त होने के कुछ वर्ष पूर्व एक महान विचारक मानबेन्द्र नाथ राय ने एक किताब लिखी "Party Power & Politics" उसमें उन्होंने कहा कि वहां के लोग बहुत सुशिक्षित हैं यहां लोग शिक्षित नहीं हैं। जब तक जन शिक्षा का पूरा विस्तार नहीं होता तब तक यदि यहां प्रजातन्त्र आयेगा तो गड़बड़ हो जाएगी।

जिस समय संविधान बन रहा था उस समय परमपूज्य श्री गुरुजी ने कहा कि यह जो फैड्रेलइज्म की बात कर रहे हैं इससे बहुत गड़बड़ होने वाली है। श्री गुरुजी ने अपनी ओर से कुछ सुझाव भी दिये। लोकनायक जय प्रकाश नारायण और आचार्य विनोबाभावे और एम० एन० राय आदि कई लोगों ने कहा कि पार्टीविहीन प्रजातन्त्र होना चाहिए। राजनैतिक पार्टी यह जो पाश्चात्य धारणा है यह किसी के लिए भी उपयुक्त नहीं है। उनके लिए भी नहीं है। यह समाप्त होनी चाहिए पार्टीविहीन प्रजातन्त्र होना चाहिए। श्रेष्ठ विचारकों ने, जिन्होंने प्रधानमन्त्री नहीं बनना था, बड़े श्रेष्ठ विचार दिये थे। किन्तु संविधान बन गया। निरक्षरता और गरीबी बहुत बड़ी मात्रा में होने के कारण, जिन्हें जल्दी से जल्दी हकूमत में आने की इच्छा थी ऐसे लोगों के देशी विदेशी कैपिटलिस्टों के साथ समझौते हुए। उनके पैसों के भरोसे वे हकूमत में आये। इनकी हकूमत के भरोसे उनको पैसा बनाने का मौका मिला। इस तरह की बातें हुई और हम लोग आगे बढ़

गये । यह सारी बातें तो समाचार पत्र किसी भी कारण नहीं देंगे । क्योंकि समाचार पत्रों में केवल सनसनी खेज खबरों का ही महत्व हो सकता है । राष्ट्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बातें आनी चाहिए ऐसा नहीं ।

भारत और चुनाव

हमारा देश Pluralistic समाज है वहां Pluralistic नहीं है । सबसे बड़ी बात कि हमारे यहां सुशिक्षित लोगों की संख्या बहुत कम है। यहां के 44 करोड़ लोग पूर्ण निरक्षर हैं । 2 करोड़ लोग आधे निरक्षर हैं । हमारे देश की राजनैतिक पार्टियां अपना घोषणा पत्र छाप कर करोड़ों लोगों में बांटती हैं । जहा 44 करोड़ पूर्ण निरक्षर हैं । 2 करोड़ अर्ध निरक्षर हैं । कौन पढ़ेगा आपका घोषणा पत्र । वहां मतदान घोषणा पत्र, कार्यक्रमों के आधार पर होता है क्योंकि शिक्षा है । दूसरे यहां 50 से 60 प्रतिशत लोग गरीबी की रेखा के नीचे हैं । वहां ऐसी हालत नहीं है । गरीबी की रेखा के नीचे के कारण शक्ति प्राप्त करने का आसान तरीका यहां वोट खरीदना है । दहशतवाद एक नया तत्व अभी आ गया । इसे अगर छोड़ भी दिया तो वोट खरीदना, यह शक्ति प्राप्त करने का छोटा तरीका है । वोट तरह तरह से खरीदे जा सकते हैं । गैर इज्जत-दार पद्धति से भी खरीदे जा सकते हैं और इज्जतदार पद्धति से भी खरीदे जा सकते हैं । उसके लिए पैसा चाहिए । पैसा पैसे वाले से आयेगा गरीबों से नहीं आ सकता । पैसे वाला यदि पैसा देगा वह अपनी शर्त लगायेगा । वह कोई हर्षवर्धन नहीं है । जो कहेगा कि मैं तो माया के जाल में फंस गया हूं नेता जी आप आ गये मेरा खजाना लूट कर ले जाइये, ऐसा कोई नहीं कहेगा । जो एक पैसा

देगा तो उसकी शर्त होगी और शर्त यही होगी कि हमारे पैसे से यदि आप हकूमत में आ जाते हो तो हमें अपना पैसा बढ़ाने के लिए शोषण की इजाजत देनी चाहिए। इसी शर्त पर पैसा दिया जाता है। बाहर से समाजवाद आदि कुछ भी बातें कही जायें। लेकिन हमारे पैसे से आप हकूमत में आयेंगे इसलिए हमें अपना पैसा बढ़ाने के लिए पूरी छूट मिलनी ही चाहिए। हमारा अधिक मुनाफा बढ़े। इसी आधार पर पैसा दिया जाता है। एक कहावत है आप मेरा लाभ देखो मैं तुम्हारा लाभ देखूंगा मैं तुम्हारी पीठ खुजाता हूं तुम मेरी पीठ खुजाओ। तो बड़े पैसे वाले और राज-नेताओं का इस तरह का समझौता है।

राष्ट्रीय नीतियों में हस्तक्षेप

जब पैसे वाले कहता हूं तो मेरा मतलब है देशी और विदेशी पैसे वाले। विदेशी पैसे वाले से मेरा मतलब है अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियां देशी पैसे वाले से मेरा मतलब है केवल 25 30 औद्योगिक परिवार जो ऊपर के हैं। यह जो मध्यम और छोटे उद्योग वाले है उनकी कोई गिनती नहीं। हमारे लिए मजदूरों के लिए तो छोटे उद्योग ही बड़े महत्व का विषय है लेकिन राष्ट्रीय पालिसी जब बनती है तो मध्यम और छोटे उद्योगों का कोई ज्यादा हिसाब नहीं होता जो 25-30 औद्योगिक घराने हैं उनका हिसाब होता है। यह विदेशी पैसे वाले तथा राज नेताओं का मिलकर षड्यंत्र हो जाता है। एकदम पता तो चलता नहीं। जनता वैसे भी जागरूक कहीं है किन्तु हकूमत में आने के बाद धीरे-धीरे उनकी पालिसियों को अमल में लाना बाध्य हो जाता है। इस तरह की परिस्थिति हिन्दुस्तान में आयी।

विदेशी आर्थिक घुसपैठ

राष्ट्र का राष्ट्र के नाते विचार करने वाले लोगों के ध्यान में यह बातें थीं। पहली बार पी० एल० 480 के अन्तर्गत यहां गेहूं आया उस समय राष्ट्रवादी लोगों ने कहा कि क्यों ला रहे हो ? हमारे देश में गेहूं हैं। यदि कम है तो हमारे किसानों को सरकार प्रोत्साहन दे। वे देश के लिए आवश्यक गेहूं पैदा कर सकते हैं। वे बोले इनको समझ नहीं है। इनको अर्थशास्त्र का पता ही नहीं। अर्थशास्त्र बहुत टेढी खीर है। सबसे ज्यादा खलने वाली बात 1965 में हुई। पाकिस्तान के साथ नहरी पानी का विवाद चल रहा था और स्पष्ट रूप से हिन्दुस्तान के हित के विपरीत पाकिस्तान के लिए अनुकूल, ऐसे समझौते पर भारत सरकार ने हस्ताक्षर किये। उस समय परमपूज्य श्री गुरुजी ने वक्तव्य दिया। जिसमें कहा कि यह बहुत बड़ी गलती है। यह गलत काम है। यह आप भी जानते हैं। और आप क्यों कर रहे हैं यह हम जानते हैं। जागतिक बैंक के दबाव में आकर आप यह काम कर रहें-हैं। लेकिन यदि आपको यह आदत लग जाती है कि विदेशी सरमायेदारों के दबाव में आकर अपनी पालिसी बदलना और उनको यदि प्रतीत होता है कि उनके दबाव से आप दब जाते हैं तो कुछ समय बाद हम आर्थिक गुलामी में आ जायेंगे। यह वक्तव्य श्री गुरुजी ने 1965 में दिया था। इन बातों की ओर ध्यान देने को न तो सामान्य व्यक्ति को और न समाचार पत्रों को फुर्सत है। वह अपनी दुकान, मकान, बैंक बैलेंस देखेगा कि अर्थव्यवस्था का अध्ययन करेगा। जिन्होंने यह करना है वे खरीदने बेचने योग्य वस्तुएं बन गये।

नई आर्थिक नीतियों की पृष्ठभूमि

अब जिन संस्थाओं में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक काम कर रहे हैं, उनमें से चार संस्थाएं आर्थिक संस्थाएं हैं भारतीय मजदूर संघ, भारतीय किसान संघ, ग्राहक पंचायत, सहकार भारती। ये संस्थाएं राष्ट्र के प्रहरी के नाते कार्य कर रही थीं। जब खतरा बढ़ गया इन्होंने चेतावनी दी। 1982 से चेतावनी देना प्रारम्भ हुआ है। दस साल पूर्व किसी ने उसमें दखल नहीं दिया। पिछले साल डा० मनमोहन सिंह ने बजट पेश किया। उससे पहले सोना गिरवी रखा गया था। फिर डा० साहिब ने रुपये का अवमूल्यन किया, कुछ औद्योगिक नीति बनाई, बजट गरीब लोगों के खिलाफ जाने वाला लाया तो सभी विपक्षी पार्टियों के नेताओं ने कहना शुरू किया कि देशद्रोही तो यह डा० मनमोहन सिंह है। इसने श को बेच दिया है। आश्चर्य की बात है कि डा० मनमोहन सिंह का सारा काम गलत था। इसमें शंका नहीं है। उसकी कड़ी से कड़ी निन्दा करनी उचित थी। इसमें भी कोई शक नहीं। लेकिन ये निन्दा करने वाले विपक्षी राजनेता इतने साल तक सो रहे थे? कई दशकों से जो गलत नीति भारत सरकार ने चलाई थी उसका अपरिहार्य परिणाम ही डा० मनमोहन सिंह की नीति रही है। जो डा० मनमोहन सिंह को देशद्रोही कह रहे हैं उनमें से ऐसे लोग भी हैं जो स्वयं वित्तमंत्री रहे। और वित्तमन्त्री रहते हुए इन्हीं नीतियों को उन्होंने आगे बढ़ाया है। ऐसे एक सज्जन अब जोर से कह रहे हैं कि हम देशभक्त हैं, डा० मनमोहन सिंह देशद्रोही है। थोड़े ही साल पहले उन्होंने यही काम किया था जो आज डा० मनमोहन सिंह कर रहे हैं। आज खटाक से सारे देशभक्त हो गये हैं लेकिन यह

बात लोगों के सामने नहीं आई कि यह पहली प्रक्रिया नही है। यह एक श्रृंखला है उसकी यह आखिरी कड़ी है। कई दशकों से जो एक श्रृंखला चलती आई है उसकी यह आखिरी कड़ी याने डा० मनमोहन सिंह का कार्य है। यह लोग भूल गये। इस कारण जो टीका-टिप्पणी होती है वह एक दायरे में होती है। वास्तव में इसको बहुत बारीकी से देखने की आवश्यकता है।

अर्थव्यवस्था का अन्तर्राष्ट्रीयकरण

जिन्होंने यहां आर्थिक गुलामी लादी है बड़े चतुर पुरुष हैं वे पहले से भूमिका तैयार कर रहे हैं। वह भूमिका क्या है? एक तो उन्होंने सोचा कि यहां का जनमानस ऐसा बनाना चाहिए कि आर्थिक स्वातन्त्र्य कोई अच्छी बात नहीं है। आर्थिक स्वातन्त्र्य की बात भारतीयों के मन में आएगी यह पहले से ही उन्होंने भांप लिया था। इसलिए आर्थिक स्वातन्त्र्य वांछनीय नहीं है यह प्रचार पहले से शुरू हुआ। आर्थिकता का अन्तरराष्ट्रीयकरण बड़ा आनन्ददायक शब्द आया है। हमारी अर्थ व्यवस्था का भी अन्तरराष्ट्रीयकरण होना चाहिए कौन नहीं चाहेगा? बड़ी इज्जत बढ़ती है। पर क्या वैश्वकीकरण हो रहा है? ग्लोबलाइजेशन का मतलब यह होना चाहिए कि अन्तरराष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के हम आवश्यक अंग बन गए। इसमें आपत्ति नहीं परंतु यह समानता के आधार पर हो किन्तु अन्तरराष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के यदि हम गुलाम बन जाते हैं, उनके अधीन काम करने वाले, उनके गुलाम के नाते काम करने वाले बन जाते हैं। तो यह तो वांछित नहीं।

यहीं बात एक बार पहले आई थी। दूसरा महायुद्ध समाप्त हुआ था कांग्रेस के नेताओं को छोड़ना शुरू हुआ था लोगों में फिर से चर्चा शुरू हुई थी कि पूर्ण स्वराज्य हमें चाहिए। हिन्दुस्थान

को छोड़ना तो बाध्य हो गया था तो भी कुछ न कुछ तो अपना reservation होना चाहिए। इस फिक्र में अंग्रेज साम्राज्यवादी थे। महायुद्ध के समय जब कांग्रेस के नेता जेल में थे, उस समय वायसराय के ऐक्ज़ीक्यूटिव कौंसिल में जो लोग थे उनके द्वारा सूक्ष्म प्रचार अंग्रेज सरकार ने शुरू किया। आज दुनिया बदल गई है दुनिया का शत्रु हिटलर अब समाप्त हो गया है। रूस और अमरीका अब दोस्त बन गये हैं। दुनिया छोटी हो रही है संचार के साधन यातायात के साधन बढ़ गये हैं। अब हम एक विश्व की अवस्था में जा रहे हैं, ऐसे समय स्वराज्य की बात करना दकियानूसी है। स्वराज्य माने क्या? ये लोग जो पूर्ण स्वराज्य की मांग कर रहे हैं बाकी दुनिया से कटना चाहते हैं अलगाव चाहते हैं।

एक चतुर पुरुष थे सर सी. पी. रामा स्वामी अय्यर इन्होंने एक नारा दिया उस नारे में और आज के अन्तरराष्ट्रीयकरण में कितना अन्तर है यह जरा आप देखिए। उन्होंने मोटो दिया, नये हालात में हमें अन्तरराष्ट्रीयता का विचार करना चाहिए। इसलिए स्वतन्त्रता नहीं आपसी निर्भरता हमारा उद्देश्य चाहिए। अब आपसी निर्भरता में तो कोई आपत्ति नहीं। वास्तव में अंग्रेजों के मन में जो आपसी निर्भरता थी वह समानता के आधार पर नहीं थी। उनका ऊपर का हाथ रहेगा। हमारा नीचे का हाथ रहेगा। लेकिन अंग्रेजों के अनुकूल जनमानस बनाने के लिए एक बड़ा शब्द दिया गया : स्वतन्त्रता नहीं आपसी निर्भरता। और जो स्वराज्य की बात करते हैं वे दकियानूसी है। सारे जगत से अपने को दूर करना चाहते हैं। ऐसी गलतफहमी फैलाई गई। आज भी वही हो रहा है। जो स्वदेशी की बात कर रहे हैं दकियानूसी हैं, उनको पता ही नहीं कि दुनिया कहां जा रही है?

आज दुनिया कितनी छोटी हो रही है। यह समझ स्वदेशी का जो प्रचार कर रहे हैं वे बाकी दुनिया से स्वयं को काट लेने का विचार कर रहे हैं। यह गलत बात है। अब हम लोगों को इकट्ठा करने का विचार करना चाहिए। जो स्वदेशी का विचार करते हैं वे अलगाव चाहते हैं कि नहीं? हम हिन्दू हैं। हिन्दू हमेशा मानवतावादी रहा है। वैश्विक विचार लेकर चलने वाला है। हम तो वसुधैव कुटुम्बकम मानने वाले हैं। सम्पूर्ण विश्व एक कुटुम्ब है। हम अलगाववादी नहीं हैं! लेकिन अन्तरराष्ट्रीयकरण के नाम पर कुछ वेस्टिड इंटिरैस्ट रखने वाले देशों और कैपिटि-लिस्टों ने हमारे देश को अपना गुलाम बनाने के लिए एक अच्छा नाम दिया आर्थिकता का अन्तरराष्ट्रीयकरण। बहुत देर से ऐसा प्रचार चल रहा है कि भारत की अर्थ-व्यवस्था का ग्लोबलाइजेशन करना चाहिए। स्वदेशी का प्रचार करने से आइसोलेशन आ जाता है यह बात दकियानूसी है। ऐसी बात नहीं। हम समानता के आधार पर विश्व आर्थिकता का प्रारूप चाहते हैं। हम समानता का आधार चाहते हैं।

विदेशी पूंजी निवेश

पहले की भांति ही शोषण की प्रक्रिया धीरे-धीरे शुरू हुई। जैसे विदेशी सहायता निवेश आती है। विदेशी सहयोग सम्बन्धी समझौते होते हैं। विदेशी सहायता आ जाती है। अब लोग कहते हैं कि इसमें खराबी क्या है? विदेशी निवेश किस देश में नहीं है। विदेशी सहयोग सम्बन्धी समझौते किस देश में नहीं हैं? कैपिटि-लिस्टों के अन्तर्गत चलने वाले प्रैस भी यही बात कहते हैं कि यह तो सारी दुनिया में ही चलता है। ये लोग कह रहे हैं कि हम को

कुछ नहीं चाहिए लेकिन वे यह नहीं बताते कि बात की वास्तविकता क्या है ? यह ठीक है कि विकसित देशों में भी फारिन को लेबराइजेशन है। जैसे इटली, इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी और अमरीका में भी। अमरीका के बारे में एक बात बता दूं कि अमरीका आज जो नम्बर एक देश दुनिया में माना जाने लगा है 20 साल तक ऐसी स्थिति नहीं रहेगी। पहले ही वह नीचे की ओर जाना शुरू हो चुका है। हमारे लिये मुश्किल यह है कि वह तो नीचे चला जाएगा तब तक हमें बर्बाद करके छोड़ेगा। हमारे लिए यही संकट है।

अमरीका में भी आज विदेशी निवेश है और विदेशी सहयोग सम्बन्धी समझौते हैं। लोग कहते हैं कि यदि विकसित देशों के लिए वह ठीक है तो हमारे लिए क्यों नहीं ? हमारा कहना है कि हमारे लिए भी ठीक है। जैसा वहां है यहां भी वैसा हो। यह फर्क समाचार पत्र नहीं बताएंगे कि वहां क्या है और यहां क्या नही है ? वहां विकसित देशों में जो विदेशी निवेश आता है, विदेशों से समझौते होते हैं, वे यजमान देश की इच्छा के अनुरूप होते हैं। यहां जो कुछ होता है वह अतिथि देश की इच्छा के अनुरूप होता है। अर्थात् जब भी किसी विकसित देश में निवेश होता है तो यजमान देश के लिए अनुकूल ऐसी शर्तों पर होता है। यह ठीक है कि वार्तालाप होती है। वार्तालाप में कुछ लेन-देन अवश्य होता है परन्तु ऐसा नहीं कि निवेश करने वाले देश को तो सब कुछ मिले और जहां निवेश करना है वह देश बर्बाद हो जाए ! ऐसा नहीं है। यजमान देश अपने राष्ट्रीय स्वार्थ की फिक्र रखते हुए लेन-देन का विचार करता है। यह समानता के आधार पर वार्तालाप होता है। हमारे यहां का एक भी वार्तालाप समानता के

आधार पर नहीं है। हमारे सारे वार्तालाप आत्मसमर्पण करने वाले हैं। लेकिन कहा जाता है कि यदि हमने आत्मसमर्पण किया होता तो वे बहुत पैसा काहे के लिए देते। क्या वे राजा कर्ण हैं जो बहुत पैसा देने के लिए तैयार हो गए लोगों पर उपकार करने के लिये उतारू हो गये। बाहर पैसा और टैकनौलोजी देना उनके लिये भी आवश्यक है। उनको जिन्दा रहने के लिये भी आवश्यक है कि उनका पैसा कहीं न कहीं निवेश होना चाहिए। और बातचीत करने के लिये जाने वाले हमारे नेता और सैक्रेटरी यदि नेशनल सैल्फ इंटरैस्ट रखते तो चाहे हमारी 100 में से 100 शर्तें न मान ली जातीं लेकिन लेन-देन में हमारा नैशनल सैल्फ इंटरैस्ट तो बच जाता। आज जो हम पूरी तरह से आत्मसमर्पण करते हैं और आर्थिक गुलामी में जा रहे हैं, यह हालत न आती। किन्तु बाकी लोगों को तो पता नहीं इसलिये कहते हैं कि मंजूर कर लो। दुनिया में जो चलता है इनको पसन्द नहीं है।

विकसित देशों में विदेशी पूंजी निवेश

अब दुनिया में किस तरह आत्मसमर्पण होता है, यह देखिए। दुनिया के विकसित देशों के विदेशी सहयोग समझौतों में यह शर्त नहीं है कि कच्चा माल कहां से लेना यह तय किया जाए। सहयोग से कारखाना खुल गया। यहां निकट कच्चा माल उपलब्ध है। हमें कच्चा माल लेने की इजाजत नहीं है। वहां से कच्चा माल मंगवाना पड़ेगा जहां से वे चाहेंगे। मशीनरी के पुर्जे बनाना हमारे लिये कठिन है क्या ? किन्तु पुर्जे वहां से आएंगे। मुरम्मत हमारे इंजीनियर कर सकते हैं लेकिन वहां के इंजीनियर आकर ही मुरम्मत करेंगे, नहीं तो होगी नहीं। चीन ने जब आटोमोबाइल

के लिये जापान से समझौता किया तो उन्होंने कहा कि तुम्हारे टैक्नालोजिस्ट आने दो, हमारे टैक्नालोजिस्ट को शिक्षित करें। समयबद्ध प्रोग्राम शिक्षा दीक्षा का तय करें। इसके लिये आप जितनी संख्या चाहते हैं उससे ज्यादा भेजिए। आप जितनी तनखाह चाहते हैं उससे दुगनी तनखाह हम देंगे। इसके लिये आपत्ति नहीं लेकिन समयबद्ध प्रोग्राम में हमें शिक्षित कीजिए और फिर वापस जाइए। यहां हर विदेशी सहयोग समझौते में बड़ी फौज आ जाती है। जिसकी आवश्यकता नहीं। उनको तनखाह जो वे कहते हैं देनी पड़ती है। फिर वे चाहे जब तक रहते हैं। हमारे लोगों को शिक्षित करने की न उनकी इच्छा है और न हमारी सरकार का कोई आग्रह है कि जल्दी शिक्षित किया जाए। मार्कीट नीति वे तय करते हैं। अन्य नीतियां वे तय करते हैं। यहां तक हास्यास्पद स्थिति है कि कीमतें उन्होंने तय करना उस कीमत पर हमारा माल खरीद लेना। खरीदने के बाद जहाजों में डाल कर ले जाना और फिर अपने देश की बन्दरगाह में वह जहाज रुकता भी नहीं सीधा दूसरे देश की बन्दरगाह में जाकर जहाज रुकता है। जिस देश के साथ उनका पहले से समझौता होता है। कम कीमत पर हमारा माल ले जाते हैं। ज्यादा कीमत पर वहां बेचते हैं। हमें उसमें दखल देने की कोई स्वतन्त्रता नहीं। इस तरह के समझौते विकसित देशों में नहीं। हर एक का अलग-अलग pattern है। किन्तु इस तरह का नहीं। किन्तु यह जो फर्क है यह न नेता बताते हैं न समाचारपत्र बताते हैं। इसके कारण हमारे लोग गुमराह हो जाते हैं।

विदेशी पूंजी नहीं आएगी तो हम अपने ही भरोसे कुछ कर सकते हैं क्या? आपको आश्चर्य होगा हम अपने भरोसे कुछ कर

सकते हैं इसका प्रयोग कभी किया ही नहीं। ठीक है कि सारा काम हम अपने भरोसे न कर सकें, लेकिन लोगों में यदि राष्ट्र भक्ति की भावना जागृत रही जैसे जर्मनी और जापान में है तो राष्ट्र भक्ति की भावना के कारण हम तरक्की कर सकते हैं। पर इसका अन्दाजा कभी सरकार ने लिया है क्या ? पूंजी निर्माण के लिये बचतें एक बहुत बड़ा तत्व है। देश भक्ति की भावना तो खत्म हुई। 1947 के बाद किसी के ऊपर देश को खड़ा करने की जिम्मेवारी नहीं सिवाय अपना स्वार्थ सिद्ध करने के। उपभोगवाद इधर आ गया। जर्मनी, जापान में उपभोगवाद बहुत कम है वे विकसित देश हैं। लेकिन हमारे जैसे उपभोगवाद वहां नहीं हैं। उपभोगवादी न होने के कारण बचतें बहुत हैं। देश के लिये बचतें करना है, देश के पूंजी निर्माण के लिये बचतें करना है। यह प्रवृत्ति भी उन लोगों में है। उसके कारण राष्ट्रीय बचतों के आधार पर ही बहुत सा काम वह कर सकते हैं। मैं यह बताता हूं कि हमारे देश में बचतें बहुत बड़ी मात्रा में हो सकती थीं। यदि हमने लोगों की उस दिशा में देश भक्ति जगाई होती।

एक बड़े औद्योगिक घराने के मुखिया ने दो साल पहले एक स्टेटमैंट दिया था उन्होंने कहा कि जहां तक घरेलू मार्कीट का सम्बन्ध है, भारत की मार्कीट बड़ी है। भारत अपने आप में ही पूरा विश्व है। ऐसा कहा भारत अपने आप में ही एक जगत है घरेलू मार्कीट की दृष्टि से। यदि बाहर के जगत से सम्बन्ध टूट भी जाता है तो भी हम अपने बलबूते पर अपनी अर्थ-व्यवस्था चला सकते हैं। वह गलत हो या सही हो मैं उनकी स्टेटमैंट का पूरा अनुमोदन नहीं कर रहा। लेकिन इसका तात्पर्य यह है कि हमारी अपनी

अर्थव्यवस्था खड़ी करने की, बचतें बढ़ाने की, हमारी शक्ति बड़ी थी। देशभक्ति का आवाहन न होने के कारण उपभोगवाद बढ़ गया बचतें नहीं हो सकीं। यह एक बात थी।

आर्थिक नीतियों में परवशता

दूसरी बात उनकी जो पूंजी आ रही है वह समानता के आधार पर नहीं उनकी शर्तों पर आ रही है। उसके कारण हम पर थोंपने की उनकी ताकत क्रमशः बढ़ती गई। आज हम आर्थिक गुलामी में आ गये लेकिन उनकी ताकत बढ़ती ही गई। कैसे बढ़ती गई? एक छोटा-सा उदाहरण देता हूं। हम कहते हैं आर्थिक आत्मनिर्भरता राष्ट्रीय आर्थिक आत्मनिर्भरता। प्रगतिशील लोग कहते हैं कि यह आब्सकेंटरिज्म है। आठ साल पहले की बात है कलकत्ता जाने वाला था। हमारा मजदूर क्षेत्र में हमेशा सोशलिस्टों, कम्युनिस्टों के साथ संयुक्त मोर्चा रहता है। हमारा संयुक्त मोर्चा और राजनैतिक लोगों का संयुक्त मोर्चा इसमें अन्तर है। पालिटक्स में जब लोग संयुक्त मोर्चा कहते हैं तो वह एक वैदिक शादी के जैसा हो जाता है। हमारे यहां ऐसा नहीं संयुक्त मोर्चा के कार्यक्रम में आकर हम और कम्युनिस्ट सरकार को गाली देने का पवित्र कार्य करते हैं। लेकिन उससे आधा घण्टा पहले हमारी एक-दूसरे से मारपीट भी हो सकती है। पन्द्रह मिनट के बाद भी हमारी आपस में मारपीट हो सकती है। फिर भी संयुक्त मोर्चा चलता रहता है। तो हमारा संयुक्त मोर्चा याने तड़ाक शादी है वैदिक शादी नहीं है जैसा राजनैतिक क्षेत्र में होता है।

हमारे ही दफ्तर में कलकत्ता में संयुक्त मोर्चा की मीटिंग

थी। सुबह का समय था चाय मंगवाई थी। चाय के बाद बैठक का काम शुरू होता इतने में एक लड़का एक हाकर आया। कोने में कम्युनिस्ट नेता भी बैठे थे उन्होंने चाय पीते पीते पढ़ना शुरू किया। उन्होंने कहा मिस्टर ठेंगड़ी क्या बात है ? राजीव गांधी का स्टेटमेंट आया है। मैंने कहा, क्या ? उन्होंने कहा कि पूर्वोत्तर भारत में नैशनल टैक्सटाईल निगम की मिलों को केन्द्र सरकार की ओर से जो सबसिडी दी जाती थी पहली अप्रैल से वह पूरी तरह से बन्द हो जाएगी। मैंने कहा किस का स्टेटमेंट है उन्होंने कहा कि आप ऐसी ही बातें बोलते रहते हैं। ऐसा कहकर उन्होंने विषय बदल दिया। उस दिन चर्चा समाप्त नहीं हुई। दूसरे दिन फिर बैठना पड़ा। दूसरे दिन भी प्रातः चाय के समय वही लड़का आया। अखबार कम्युनिस्टों के हाथ में आया। उन्होंने अखबार खोला कहने लगे ठेंगड़ी जी जो बात आप कहते थे सत्य है। मैंने कहा क्या ? वे बोले आज के अखबार में आया है कि दो महीने पहले वर्ल्ड बैंक ने हमारे प्रधानमन्त्री को पत्र लिखा था कि पूर्वोत्तर भारत के नैशनल टैक्सटाइल कार्पोरेशन की मिलों को आप जो सबसिडी दे रहे हैं वह यदि पहली अप्रैल से बन्द न हुई तो इतने हजार करोड़ डालर का जो ऋण हम आपको देने वाले हैं वह ऋण नहीं दिया जाएगा, रोका जाएगा। मैंने कहा मैं यही तो कह रहा था कि स्टेटमेंट प्रधानमंत्री का नहीं है स्टेटमेंट वर्ल्ड बैंक का है। लेकिन प्रधानमन्त्री का रोल क्या है ? जैसे मैं बोल रहा हूं मेरी आवाज तो बहुत कमजोर है आपके पास नहीं पहुंच सकती। यह लाउडस्पीकर मेरी आवाज आप तक पहुंचा रहा है। आपके पास जो आवाज पहुंच रही है वह मेरी नहीं लाउडस्पीकर की है। तो आप कहेंगे कि क्या लाउडस्पीकर भाषण दे रहा है। भाषण लाउडस्पीकर का नहीं है वैसे ही स्टेटमेंट प्रधानमन्त्री का नहीं है

वर्ल्ड बैंक का है। प्रधानमंत्री राजीव गांधी लाऊडस्पीकर का काम कर रहे हैं। यह हमें समझना चाहिए।

कृषि के क्षेत्र में भी घुसपैठ

आज तो विलक्षण परिस्थिति का निर्माण हो गया है। डंकेल प्रोपोजल क्या है किसी को पूरा मालूम नहीं। आई. एम. एफ. की शर्तें क्या थीं और सरकार ने कितनी मानीं यह किसी को पता नहीं। पार्लिमेंट में लोग कोशिश कर रहे हैं लेकिन पूरी तरह से हमारे हाथ-पैर बांधने वाला सारा काम है। अभी तक तो केवल औद्योगिक क्षेत्र में हानि हो रही है। अब कृषि के क्षेत्र में साम्राज्यवाद आ रहा है। यह बात हमारा भारतीय किसान संघ पहले से कह रहा है 1979 में किसान संघ ने कहा कि कृषि के क्षेत्र में विदेशों का आर्थिक साम्राज्यवाद आएगा। किसी के दखल देने का काम ही नहीं क्योंकि सामान्य मनुष्य आर्थिक विषय में रुचि नहीं रखता। उसको इसमें रुचि है कि प्रधानमन्त्री कौन बनता है? कौन किस की टांग खींचता है? किस को कौन गाली देता है यह जैसा रोचक विषय है अर्थशास्त्र वैसा रोचक विषय नहीं। पी. एल. 480 का मामला था हिन्दुस्थान में गेहूं पैदा हो रहा है। कुछ कमी है तो हिन्दुस्थान के किसान को प्रोत्साहन देकर इस कमी की पूर्ति की जा सकती है। उस समय से अमरीका से गेहूं लाया जा रहा है। हिन्दुस्थान के किसान को जो कीमत देते हैं उस से डेढ गुणा, पौने दो गुणा कीमत अमरीकन किसान को दी जाती है और उसके यातायात का खर्च भी हम ही वहन करते हैं। हिन्दुस्थान के कपास के किसान चाहे जितनी कपास उत्पाद कर सकते हैं। उनको कम कीमत देकर पाकिस्तान के किसान को दुगनी कीमत देकर यह कपास ला रहे हैं। अपने किसान को

कीकत नहीं देना। यह सब बातें चल रही थीं। लोग समझ रहे थे कि कोई गलती है। सरकार के ध्यान में नहीं है। संकट बढ़ रहा था हम लोग चेतावनी दे रहे थे किसी ने ख्याल नहीं किया।

अमरीका में अनाज बहुत बड़ी मात्रा में पैदा होता है। अपनी जनता को खिलाने के पश्चात फालतू अनाज उनके पास बहुत रहता है। पहले जो रूस समेत गोरे देशों के यहां भेजा जाता था। इसीलिए हम कहते थे कि कम्युनिस्ट रूस पूंजीवादी अमरीका के गेहूं पर पल रहा है। पहले गोरे देशों को वे भेजते थे। अब गोरे देशों की जो मंडियां हैं उसकी क्षमता का लगभग परिपूर्णता बिन्दु आ गया। अब उनके सामने सवाल है मैकेनाईजड फार्मिंग होने के कारण उत्पादन तो बहुत बढ़ रहा है। अपने देश तथा गोरे देशों की आवश्यकताएं पूरा करते हुए और भी जो अधिक उत्पादन है उसका क्या किया जाए? मांग और पूर्ति के नियम का कहना है कि जब पूर्ति अधिक रहेगी तो स्वाभाविक है कीमत कम हो जाती है। तो क्या यह सारा अधिक अनाज जला देना है या समुद्र में डाल देना है? उन्होंने कहा तीसरे विश्व के देशों में मंडियां खोजी जाएं। इन देशों में मंडियां तभी तैयार हो सकती हैं जब तीसरे विश्व के देशों की निजी कृषि फेल हो जाए। पहले हिम्मत नहीं थी अब हिम्मत हो रही है। पिछले दो साल से उनकी दुष्टता बढ़ रही है। अब नग्न होकर अपनी बात वे कहने लगे हैं कि हिन्दुस्थान में रासायनिक खाद आप इतना भी तैयार नहीं कर सकेंगे। देश के लिए जितना रासायनिक खाद आवश्यक है उतना निर्माण करने की हमारी क्षमता है। परन्तु हमें इतना भी निर्माण करने की इजाजत नहीं मिली। देश की कृषि के लिए आवश्यक बीज हमारे देश का किसान बना सकता है। उसको

बीज बनाने की इजाजत नहीं। बीज हमारे लिए सारा बाहर बनेगा, जो वे कहेंगे उस कीमत पर लिया जाएगा। ये सारी शर्त आ रही हैं। इसको रोकना बहुत कठिन है।

पेटेंट कानून

एक बहुत बड़ा खतरा जो पैदा हो रहा है। बौद्धिक सम्पत्ति का। यह बहुत लोगों के ख्याल में नहीं आता। हिन्दुस्थान में पेटेंट का कानून है। उसमें पेटेंट की मियाद पांच साल है। अमरीका में पेटेंट के कानून की मियाद 30 साल की है। किन्तु यहां का पेटेंट का कानून कैसा है ? जैसे मानो किसी कम्पनी ने च्यवन प्राश बनाने का पेटेंट लिया। उनकी कम्पनी च्यवन प्राश जिस ढंग से बनाती है उस प्रक्रिया का पेटेंट लिया है। च्यवन प्राश का पेटेंट नहीं होता। दोनों में अन्तर है। च्यवन प्राश यह वस्तु है। यह कम्पनी अपनी विशिष्ट प्रक्रिया से च्यवन प्राश बनाती है। प्रक्रिया का पेटेंट होता है माने उस प्रक्रिया को कोई दूसरा अपना नहीं सकता। हमारे यहां प्रक्रिया का पेटेंट है वस्तु का नहीं। यहां की जो आयुर्वेदिक वनस्पति है वे उसके गुण दोष समझते हैं। हमारे यहां भी चर्चा होती है कि आयुर्वेदिक वनस्पति कीटनाशक है। उन्होंने हमारी वनस्पतियों से दवाई बनाई। हमारी कुछ दवाइयां हैं जो प्रभावी ढंग से काम करती हैं। हमें पता है। उन्हें भी जानकारी है। आज हमारे वैद्यों ने एक प्रक्रिया का पेटेंट लिया। उनका कहना है कि यदि किसी वनस्पति से कोई दवाई बनाई तो उसकी जो प्रक्रिया है हमारी पद्धति के अनुसार हो। उनकी जो प्रक्रिया है उसका पेटेंट उन्होंने लिया है। दूसरी प्रक्रिया से दवाई बन सकती है यह वे जानते हैं। इसलिये वे कहते

है कि प्रक्रिया का नहीं वस्तु का पेटेंट हो। कोई दूसरी पद्धति से दवाई बनाने में स्वतन्त्र नहीं। बौद्धिक सम्पत्ति पर उन्होंने बंधन लगा दिया। इस तरह से हमारे हाथ-पांव बांधने की बात चल रही है। हमारी सरकार ऐसी है जसे अजगर के बारे में देहाती लोग कहते हैं कि उसने एक छिपकली पकड़ ली उसे वह निगल भी नहीं सकता और उगल भी नहीं सकता। ऐसी अवस्था में आज सरकार है। हम में आज क्या इतनी ताकत है कि अथिक गुलामी हम आने नहीं देंगे।

दूसरी बात हमें आलस्य की ऐसी आदत लग गई है कि कोई भी काम हम स्वयं नहीं कर सकते। हम कहते हैं कि सरकार की पालिसी क्या है? सरकारी पालिसी ऐसी बननी चाहिए। ऐसी हालत में हम आर्थिक गुलामी का विरोध कैसे कर सकेंगे? ऐसी स्थिति में सरकार तो कुछ करना नहीं चाहती, इस काम के लिये जो प्रखर देशभक्ति चाहिए वह दिल्ली में नहीं है। मान लीजिए कि दिल्ली सरकार ने प्रखर देशभक्ति दिखा भी दी तो क्या जनमानस में इतना जागरण है? केवल सरकार अपने भरासे विदेशी गुलामी को खत्म नहीं कर सकती। सरकारी पालिसी से काम होने वाला नहीं।

हम उपभोगवादी हो गये हैं। हमारी आदतें बिगाड़ दी गई हैं। जब भी स्वदेशी का सवाल आता है हम विदेशी के मुकाबले स्वदेशी विकल्प खोजते ही नहीं। फिर हो सकता है कि स्वदेशी चीज गुणवत्ता में कुछ कम हो सकती है, पैसे भी कुछ ज्यादा लग सकते हैं। परन्तु उपभोक्तावादी होने के नाते हम सोचते हैं कि यह स्वदेशी है या विदेशी है इससे मुझे क्या लेना-देना है?

आर्थिक गुलामी से मुझे क्या? मेरी बीवी खुश है, देश जाए भाड़ में। जब हमारे विचार ऐसे हैं तो विदेशी माल की ओर ही हमारा झुकाव होगा। परन्तु स्वदेशी खरीदेंगे यह प्रवृत्ति लानी है। कठिन नहीं है। आपने देखा होगा कि हमारे देश की पहली सरकार में ऐसे लोग थे जिनके कपड़े पेरिस से धुल कर आते थे वे खद्दर पहनने लगे थे। प्रवृत्ति को जगाया जा सकता है। यदि नेता में यह प्रवृत्ति है तो बाकी लोगों में भी जगायी जा सकती है। लेकिन यह प्रवृत्ति कब तक जागृत होती है? विकल्प कौन सा है यह प्रश्न कम महुत्त्व का है। पहला सवाल है कि देशभक्ति के लिये प्रखर देशभक्त मानस बनाने की जरूरत है। यह कब तक तैयार होगा?

कहते हैं कि जमाना बदल गया है। पर नहीं तुम बदल गये हो। 1947 से पहले स्वातन्त्र्य के लिये लड़ने की जैसी आकांक्षा थी वैसी ही आकांक्षा त्याग की भी थी। परन्तु आज क्या यह प्रवृत्ति है। अच्छे-अच्छे उपभोक्ताओं में भी यदि देशभक्ति की प्रवृत्ति हो तो वे त्याग करते हैं। दोनों महायुद्धों के समय सभी देशों के अच्छे-अच्छे लोगों ने त्याग किया। पहले जर्मनी नहीं था। 13 राज्य थे। वह खड़ा हुआ। देशभक्ति की भावना थी। राजा स्वयं देशभक्त था। उन्होंने अपील की यदि लोगों ने हमें पैसा नहीं दिया तो हम दिवालिया हो जाएंगे। ऋण देकर नहीं चलेगा। सभी कुछ दो। आपको आश्चर्य होगा कि बहुत फैशनेबल नारियों ने भी अपने जेवर दे दिये। क्यों? देशभक्ति की भावना थी। अब यह भावना यदि जागृत नहीं तो सरकार क्या कर सकती है? जनता का सहयोग चाहिए। यदि दोनों सरकार और जनता का समर्पण, सहयोग होगा तो इस आर्थिक गुलामी से निकलना सम्भव होगा। इस बात को समझना चाहिए। ●

★ स्वदेशी अपनायें ★

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के विकल्प के रूप में भारतीय वस्तुय

* **टूथ पेस्ट** — कालगेट, फारहेन्स, कलोजअप, सिबाका, ग्लीम	प्रामिस, प्रूडेण्ट, नीम, बबूल, ग्लोब, वज्रदन्ती, डाबर
* **टूथ पाउडर**— कालगेट, फारहेन्स, सिबाका	प्रामिस, वीको वज्रदन्ती, बैद्यनाथ, सरीन
* **टूथ ब्रुश**—कालगेट, सिबाका फारहेन्स, बिजडम	अजय डा. स्ट्रांग, डीलक्स प्रामिस (नीम बबूल का दातन)
* **ब्लेड**—"7" o कलाक, बिलमैन बिल्टेज, इरास्मिक	टोपाज़, अशोक, गलेण्ट, लेज़र, भारत, सिल्वर प्रिंस, इस्क्वायर, सुपर मैक्स, प्लेटियम
* शेविंग क्रीम—ओल्ड स्पाइस, लेदर, पोमोलिव, निविया, इरास्मिक	गोदरेज, इमामी, वी. जोन, डीलक्स
* **नहाने का साबुन** — लक्स, रेक्सोना, लिरिल, लाइफबाय, पियर्स, पाण्ड्स, डिटाल, विप्रो (शिकाकाई)	हमाम, चन्दन, विजिल, जैस्मीन, मोती, मार्गो, स्वास्तिक, ओ.के. खस, रोज़, सार्वोलिक (टाटा, गोदरेज, मैसूर सण्डल)
* **कपड़ा धोने का साबुन**— सनलाइट, रिन, व्हील, सर्फ, चेक, विम, हारपिक (टायलेट क्लीनर)	निरमा, डबल, 555, विमल, हीपोलीन (पाउडर)
* **रसोई घर से संबंधित सामग्री**—टिक्का दियासलाई, होमलाइट, मिल्क मेड, नेस्प्रे फेरेक्स एवरेडी	मोर, बत्तख, मुर्गा, हम, किसाई, मकई, आदि दियासलाई, अमूल इण्डाना दूध और पाउडर

श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी

(भारतीय मजदूर संघ और भारतीय किसान संघ के संस्थापक)

- दिनांक 10 नवम्बर, 1920 दीपावली के शुभ दिन आर्वी (विदर्भ) में जन्म।
- बाल्यकाल में स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए गठित वानर सेना और कालेज में सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी के नेता।
- 1941 में वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण।
- 1941 से 48 तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक।
- 1949 में दैवीय प्रेरणा से श्रमिक क्षेत्र में प्रवेश। इंटक और ऐटक के माध्यम से सन् 1955 तक अनेक फेडरेशन आदि का कार्य।
- 23 जुलाई (तिलक जयन्ती) 1955 को भोपाल में भारतीय मजदूर संघ का जन्म।
- 1964 में राज्यसभा के सदस्य। 1969 में पुन: राज्यसभा के लिए निर्वाचित।
- 1968 में संसद के प्रतिनिधिमंडल के रूप में सोवियत रूस और उसके यूरोपियन देशों का भ्रमण। अनेक अखिल भारतीय संस्थाओं से सम्बन्ध।
- 17 नवम्बर 1969 का दिल्ली में संसद के समक्ष देश के सबसे बड़े प्रदर्शन (50 हजार) का नेतृत्व।
- सन् 1970 में दीपावली के दिन 51वें जन्म दिन पर बम्बई में अभूतपूर्व सत्कार समारोह के साथ 1,11,111 रुपये की थैली भेंट।
- 1 जून 1977 से 22 जून तक जनेवा में I. L. O. की बैठक में सम्मिलित हुए। वहां पर आए हुए प्रतिनिधि आपके ओजस्वी भाषण से बहुत प्रभावित हुए। आपने संसार के श्रमिकों की समस्याओं को भारतीय दृष्टि से ओतप्रोत 37 पृष्ठों का लिखित संदेश अधिवेशन में दिया।
- 13 अगस्त 1979 को दो मास की विदेश यात्रा पर अमरीका सरकार के निमन्त्रण पर।
- 1980 में भारतीय मजदूर संघ सब संगठनों से कम आयु में दूसरे स्थान पर खड़ा हुआ।
- सन् 1982 में षष्टि पूर्ति के अवसर पर देश भर में 103 अभिनन्दन समारोह हुए।
- वर्तमान में किसान संघ और भारतीय मजदूर संघ के मार्ग दर्शक और तत्व चिन्तक।
- ACETU के निमन्त्रण पर B.M.S. के प्रतिनिधिमंडल ने चीन का दौरा किया। उस प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व आपने किया।